Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.gisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2023 GISRRJ | Volume 6 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

शासन व्यवस्था मे सदाचार का स्थान

डा. श्रुति राय
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, दिल्ली यूनिवर्सिटी, दिल्ली।

Article Info
Volume 6, Issue 6
Page Number : 161-166

Publication Issue :
November-December-2023

Article History
Accepted : 10 Dec 2023
Published : 30 Dec 2023

शोध-सार- राजव्यवस्था में शासक अथवा राजा तथा प्रजा–दोनो ही एक सिक्के के दो पक्ष हैं। तथापि शासक का स्थान ऊपर होता है। वह देश, राज्य तथा सम्पूर्ण प्रजा की सुरक्षा, उन्नति एवं चारित्रिक विकास का हेतु माना जाता है। यही कारण है कि आदर्श शासक कैसा होना चाहिये, उसपर भारतीय ज्ञानपरम्परा में प्रचुरता से चर्चा होती आई है। धर्मशास्त्रों, स्मृतियों एवं पुराणों में इसविषय में गंभीर चर्चा हुई है। इन चर्चाओं में राजा के जीवन में सदाचार को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। इस शोधपत्र में राजा के सदाचार सम्बन्धी पक्ष पर प्रकाश डाला गया है।

कूट शब्द- राजा, शासनव्यवस्था, विद्या, दण्ड नीति, न्याय।

प्राचीन काल में शासक के रुप में राजा का स्थान था। राजा पर देश का सर्वांगींण विकास, देश तथा प्रजा की सुरक्षा की केन्द्रीय व्यवस्था का भार था। ऐसे में राजा का चारित्रिक पक्ष सबल होना आवश्यक माना गया था, क्योंकि चरित्र किसी भी व्यक्ति का आन्तरिक पक्ष है, यदि आन्तरिक पक्ष सबल न हो तथा बाह्यपक्ष के बलशाली होने की सम्भावना समाप्त हो जाती है। मनुस्मृति में राजा के चरित्र के मूल्यांकन के आधार पर युगों का अनुमान भी किया जा सकता है–

कृत-त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च ।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥[1]-मनुस्मृति

विशुद्ध भारतीय परम्परा में कालकण्ड को चारयुगों में विभाजित किया गया है– सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग। राजा के व्यवहार, चेष्टा, आचार से युगों का निर्णय हो जाता है। अतएव राजा ही 'युग' कहलाता है।

कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद् द्वापर युगम् ॥
कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥ 9.302 ॥[2]

अर्थात् सोते हुए अर्थात् कर्तव्यों का पालन न करने वाला राजा के होने पर कलियुग, जागते हुए अर्थात् जानते हुए भी आवश्यकता पडने पर सक्रिय न होने वाले राजा के होने पर द्वापर युग, कर्म अथवा सन्धि–विग्रहादि राजकार्य में लगे हुए राजा के होने पर त्रेतायुग तथा शास्त्रानुसार आचरण का पालन करने वाले राजा के होने पर सत्युग होता है। अतः राजा को

1. मनुस्मृति, 9.301
2. वही, 9.302

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

अपने कर्तव्य से कभी विमुख नही होना चाहिये। भारतीय परम्परा में राजा को दैवीय स्वरूप प्रदान किया गया है। मनुस्मृति में राजा का सम्बन्ध साक्षात् देवताओं से जोडा गया है। राजा की उत्पत्ति दैवीय मानी गयी है। इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा और कुबेर का सारभूत नित्य अंश लेकर राजा की सृष्टि होती है[3]। राजा के रुप में महती दैवीय शक्ति प्रतिस्थापित होती है। इसलिये राजा को साधारण मनुष्य समझकर उसका अपमान करने से स्वयं की हानि होती है। राजा की प्रसन्नता मे लक्ष्मी, पराक्रम में विजय और क्रोध में मरण निवास करता है, अत: वह राजा सर्वतेजोमय है। सुचारु रुप से शासकीयव्यवस्था का संचालन करने के लिये ईश्वर राजा को दण्ड प्रदान करता है। यह दण्ड ब्रह्मा का धर्मस्वरूप पुत्र है, जो ब्रह्मा के तेजोमय दण्ड से उत्पन्न हुआ है। इस दण्ड के प्रभाव से सृष्टि के सभी प्राणी स्वधर्म का निष्ठापूर्वक पालन करते हैं, उससे कभी विचलित नही होते हैं।

राजा के सर्वांगींण विकास के लिये दण्डविद्या का विधान है। शास्त्रों में चतुर्विध विद्याओं के पठन-पाठन का विधान इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये किया गया है। कौटिल्य ने आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति के रुप में चारप्रकार की विद्याओं पर प्रकाश डाला है। आन्वीक्षिकी से तात्पर्य अध्यात्म विद्या है, त्रयी अर्थात् वेद, वार्ता अर्थात् व्यापार सम्बन्धी शिक्षा एवं दण्डनीति अर्थात् राजविद्या। मनु ने आन्वीक्षिकी तथा त्रयी को एक विद्या मानकर त्रयी, वार्ता और दंडनीति के रुप में त्रिविध विद्याओं को स्वीकृति दी है। शुक्राचार्य ने केवल दंडनीति को विद्या माना है । उनके मत में उपर्युक्त तीनों विद्याओंका समावेश दंडनीति में हो जाता है। क्योंकि भलीभाँति राज्यव्यवस्था चलने पर सब विद्याओं के व्यवहार की स्वत: सिद्धि हो जाती है। इसप्रकार यह देखा जा सकता है कि ऋषियों, आचार्यों आदि ने आन्वीक्षिकी, त्रयी तथा वार्ता विद्याओं का तो स्थान परिवर्तन किया है, किन्तु दण्डनीति को सभी आचार्यों ने अनिवार्य माना है। अत: दण्डनीति नि:सन्देह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विद्या है। अपने कर्तव्यों का समुचितरूप से पालन करने के लिये राजा को जितेन्द्रिय होना चाहिये। क्योंकि जितेन्द्रिय राजा प्रजाओं को वश में रखने का सामर्थ्य रखता है।

इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् ।

जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजा: ।। [4]-मनुस्मृति, 7.44।।

विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रत: ।

अनन्यां पृथिवीं भुंक्ते सर्वभूतहिते रत:[5]-- कौटिलीय अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण, पञ्चम अध्याय, पृ. 16

काम, क्रोध इत्यादि शत्रु स्वरूप होते हैं, अत: राजा को काम क्रोधादि-शत्रुरूप विकारों पर विजय प्राप्त करके इन्द्रियों को अपने वश में करने का अभ्यास करना चाहिये । इसके लिये विद्वान् पुरुषों ,ऋषियों तथा गुरुओं की संगति में रहना चाहिये , जिससे वह अपनी बुद्धि कायथोचित विकास कर सके।[6]

कौटिल्य के अनुसार विद्या तथा विनय के द्वारा इन्द्रियों को जीतना सम्भव है। काम, क्रोध, लोभ, अभिमान, गर्व और इच्छा की पूर्ति होने पर सुख का अनुभव का त्याग करने से ही इन्द्रिय जय होता है। कर्ण, त्वक्, नेत्र, जिह्वा और नासिका, इन्हीं पाँचों

---

[3]. वही, 7.4

[4]. वही, 7.44

[5]. कौटिलीय अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण, पञ्चम अध्याय, पृ. 16

[6]. वही, सप्तमअध्याय, पृ. 17

इन्द्रियों द्वारा क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप पाँच विषयोंका भोग होता है । इन पाँचों विषयों में अनासक्तिभाव भी इन्द्रियजय कहलाता है । क्योंकि समस्त शास्त्रों में प्रतिपादित विषय ही इन्द्रियजय के कारण बन सकते हैं[7]। जितेन्द्रिय राजा किसी अन्य की स्त्री, कन्या तथा पर के धन के प्रति लालसा की भावना से दूर रहता है। वह अनावश्यक हिंसा से भी दूर रहता है। अधिक निद्रा, चञ्चलता, असत्य व्यवहार, उद्धत वेषभूषा एवं अनर्थ के कार्य तथा अनर्थकारी पुरुषोंकी संगति को सर्वथा त्याग देता है। इसप्रकार वह अधर्म तथा अनर्थयुक्त आचरण करने से सदैव दूर रहता है[8] । यही कारण है कि राजा को अपनी इच्छाओं पर भी नियन्त्रण करने के लिते अभ्यास करने को कहा गया है। किन्तु विषयों के उपभोग से इच्छा कभी शान्त नही होती है, अपितु घी में अग्नि के समान वह इच्छा बढती ही रहती है–

नाजातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।

हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिर्धते॥[9]2.94

मनुस्मृति द्वितीय अध्याय के प्रारम्भ में कहता है कि मनुष्य की इच्छा सब कर्मों का मूल है। इच्छा के बिना मनुष्य कोई कर्म नहीं कर सकती है। और इच्छा का त्याग भी सम्भव नही है। मनुष्य जो कुछ करता है, वह सब इच्छा की चेष्टा है–

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।

यद्यद्धि कुरुते किंचित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम्[10]-2.4

अतः इच्छा संकल्प जगाती है। संकल्प से कार्य सम्पन्न होते हैं, तो क्यों न इच्छाओं को सकाम कर्म में न लगाकर वेदादि द्वारा प्रदत्त कर्मों में लगाया जाये। वास्तव में कर्म किये बिना कोई भी जीवित नही रह सकता है, अतः कर्म करने में इच्छा प्रबल होना चाहिये। किन्तु सकाम कर्म का निषेध करना चाहिये। वेद का ज्ञान तथा वेदोक्त कर्म करना भी इच्छा से ही होता है। –

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहा स्त्यकामता।

काम्यो हि देवाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः[11]- 2.2

तृष्णा से नष्ट बुद्धि वाला ईप्सित विषयों के लिये अवैधानिक अर्थात् यथेच्छ आचरण करता है, तो वह नरक जाता है, और उसे ईप्सित फल भी नही मिलता है। इसलिये श्रुति और स्मृति से बताया हुआ काम्य कर्म यथाविधि करने से कल्याण के लिये होता है, अन्यथा नहीं। राजा को भी वेदोक्त कर्म का पालन करना चाहिये। तभी वह अपने कर्तव्यों का पालन कर सकेगा। वही उसका धर्म है। राजा को धर्म और नीतिके अनुसार ही काम या इच्छा का सेवन करना चाहिये। उसे परस्पर एक दूसरे के आश्रित धर्म, अर्थ और कामस्वरूप त्रिवर्गका समानभाव संतुलित रुप से सेवन करना चाहिये। क्योंकि धर्म, अर्थ और काम इन तीनों में यदि किसी एक का व्यसन के रूप में अत्यधिक सेवन हो जाता है अर्थात् संतुलितरुप से उसका सेवन राजा नही कर रहा है, तो वैसा आचरण उसके लिये तथा उसकी प्रजा के लिये भी कष्टकारी होता है। धर्म का अत्यधिक सेवन करने से

---

7. वही, प्रथम अधिकरण, षष्ठ अध्याय, पृ. 16

8. वही, प्रथम अधिकरण, सप्तमअध्याय, पृ. 18

9. मनुस्मृति, 2.94

10. वही, 2.4

11. वही, 2.2

अर्थ तथा काम को, अर्थ का अत्यधिक सेवन करने से धर्म तथा काम को, काम का अत्यधिक सेवन धर्म तथा अर्थको हानि पहुचता है। किन्तु कौटिल्य का मत है कि अर्थ ही प्रधान वस्तु है । क्योंकि धर्म और काम अर्थ पर ही निर्भर रहते हैं[12]

जो राजा शास्त्रविहित नियमोंके विपरीत आचरण करता है और इन्द्रियों को वश में नहीं रखता, वह यदि चारों समुद्रपर्यन्त फैली पृथिवीका सम्राट् हो तो भी तत्काल नष्ट हो जाता है । शास्त्रों में रावण का उदाहरण है जो कि अभिमानवश राम की पत्नी सीता को न लौटाकर विनाश को प्राप्त हुआ। इसीप्रकार कौरवपुत्र दुर्योधन पाण्डवों को उनका हिस्सा न देकर दोनों अधोगति को प्राप्त हो गया। ऐसे दम्भी राजा कामक्रोध आदि शत्रुओं- के वशीभूत होकर इन्द्रियोंपर काबू पानेमें असमर्थ होनेके कारण समूल नाश को प्राप्त हुए।

राजा को विनयशील भी होना चाहिये। किन्तु वह किसी अद्रव्य अथवा अपात्रको विनीत नहीं बना सकती । जिस व्यक्ति की बुद्धि शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण (सुनी हुई बातको हृदयंगम कर लेना), धारण (उपदेशमें सुनी हुई बातको स्मरण रखना), विज्ञान (उस याद रक्खी हुई बातका विशेष ज्ञान), ऊहा (न कही हुई बातका अनुमान), अपोह (औरोंके तर्कका निराकरण करनेके लिए विपरीत तर्क) तथा तत्त्व की बातका यथार्थ ज्ञान जिस व्यक्तिमें हो, उसीको विद्या विनीत अर्थात् शिक्षित बना सकती है-औरोंको नहीं। [13] अतएव शिष्यगण उन-उन आचार्योंके अनुशासनमें रहकर विद्याध्ययन करते हुए उनके द्वारा निर्मित नियमों का पालन करें । राजा को क्रोधजन्य तथा काम जन्य व्यसनों का त्याग का भी त्याग करना चाहिये-

दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ।

व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।।[14]7.45।।

राजा को कामजन्य दश तथा क्रोधजन्य आठ, अन्तमें दु:खदायी व्यसनोंको प्रयत्नपूर्वक त्याग कर देना चाहिये। क्योंकि व्यसनों में आसक्ति होने पर चरित्र का अपयश होता है-

कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपति: ।

वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु ।।[15]7.46 ।।

कामजन्य व्यसनों में आसक्त राजा अर्थ तथा धर्म से भ्रष्ट हो जाता है और क्रोधजन्य व्यसनों में आसक्त राजा आत्मासे ही भ्रष्ट (स्वयं नष्ट) हो जाता है ॥

कामजन्य दश व्यसनोंके नाम जानना आवश्यक है, इनके नाम इसप्रकार हैं- मृगया (शिकार), जुआ, दिनमें सोना, परायेकी निन्दा, स्त्रीमें अत्या- सक्ति, मद (नशा - मद्यपान आदि), नाच-गाने में अत्यासक्ति और व्यर्थ (निष्प्रयोजन) भ्रमण; ये दश कामजन्य व्यसन हैं[16] ।।

---

[12]. कौटिलीय अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण, सप्तमअध्याय, पृ. 18

[13]. वही, पञ्चम अध्याय, पृ. 14

[14]. मनुस्मृति, 7.45।।

[15]. वही, 7.46

[16]. वही, 2.47

मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ।

तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥ 2.47॥

क्रोधजन्य आठ व्यसनों के नाम भी जानने योग्य हैं। चुगलखोरी, दुस्साहस, द्रोह, ईर्ष्या (दूसरेके गुणको न सहना), असूया (दूसरों के गुणोंमें दोष बतलाना), अर्थदोष (धनापहरण या धरोहर आदिको वापस नहीं करना), कठोर वचन और कठोरदण्ड; ये आठ क्रोधजन्य व्यसन हैं –

पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् ।

वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥[17]7.48॥

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ।

तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणो ॥[18] 7.49

सब विद्वान् लोग इन दोनों की जड़ जिसको जानते हैं, उस लोभ को चेष्टा करके विजय प्राप्त करनी चाहिये, क्योंकि कामजन्य तथा क्रोधजन्य व्यसन उस लोभ से उत्पन्न होनेवाले हैं ।।

कुछ सदाचार सम्बन्धी धर्म ऐसे भी होते हैं, जो सभी वर्णों और सभी आश्रमों का साधारण धर्म है। इनके नाम इसप्रकार हैं– अहिंसा, सत्य, काय, वचन और मनकी शुद्धि , परदोषदर्शनका अभाव (गुणपक्षपातित्व), दयालुता, क्षमा तथा दान– **सर्वेषामहिंसा सत्यं शौचमनसूयानृशंस्यं क्षमा च**[19]। राजा को इन साधारणों धर्मों का पालन भी करना चाहिये। वर्णाश्रम वर्ग में कहे गये स्वधर्म का पालन करने से स्वर्ग तथा अनन्त सुख अर्थात मोक्ष तक की प्राप्ति हो सकती है । किन्तु स्वधर्म का उल्लंघन करनेसे लोग कर्मसंकर तथा वर्णसंकर होकर सर्वथा नष्ट हो जाते हैं–

स्वधर्मः स्वर्गायानन्त्याय च । तस्यातिक्रमे लोकः संकरादुच्छेद्येत[20]

अतएव राजाका कर्तव्य है कि वह स्वयं भी धर्मों का पालन करे तथा सभी प्राणियोंको अपने–अपने धर्मसे विचलित न होने देने के लिये प्रेरणा देता रहे। जो राजा सब लोगों को अपने–अपने धर्मपर चलाता है, वह इहलोक तथा परलोक दोनों लोकोंमें सुखी होता है ।।–

तस्मात्स्वधर्म भूतानां राजा न व्यभिचारयेत् । स्वधर्म सन्दधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति–[21]

जिस राजा की प्रजा मर्यादा में रहती है, जो वर्ण और आश्रम के नियमों का श्रद्धापूर्वक पालन करती है और जो त्रयी द्वारा विहित विधानसे रक्षित रहती है, वह प्रजा सदा प्रसन्न एवं समृद्ध रहती है और उसका कभी भी नाश नहीं होता।

---

17. वही, 7.48

18. वही, 7.49

19. कौटिलीय अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण, तृतीय अध्याय, पृ. 11

20. वही, **प्रथम अधिकरण, तृतीय अध्याय, पृ. 12**

इसप्रकार शासन व्यवस्था में सदाचार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका केन्द्र राजा होता है। राजा के आचरण से प्रजा को भी प्रेरणा प्राप्त होती है। यदि राजा का चरित्र उत्तम नही होता है तो उस स्थिति में वह देश की उन्नति में सक्रिय तथा सकारात्मक भूमिका निभाने में असमर्थ रहता है। यहां यह भी द्रष्टव्य है कि राजा से तात्पर्य शासक है, चाहे वह् किसी भी काल, देश, स्थान से सम्बद्ध हो। अत: सदाचारी शासक की आवश्यकता प्रत्येक स्थिति में अनिवार्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. मनुस्मृति, चौखम्भा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2019
2. महाभारत (1-6 खण्ड), साहित्याचरण पण्डित, रामनारायण दत्त, शास्त्री पाण्डेय, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2017
3. मनुस्मृति (2 खण्ड), हरिगोविन्दशास्त्री, चौखम्भा कृष्णदास अकेदमी, दिल्ली, 2019
4. गौतम धर्मसूत्र, बाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2011
5. तैत्तिरीय संहिता, नाग पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2005
6. विष्णुगुप्त (चाणक्य), कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्, रामतेज शास्त्री, आर्यवर्त संस्कृति संस्थान, इलाहाबाद, 2022
7. काणे, पांडुरंग वामन, अनुवादक-अर्जुन चौबे काश्यप, खंड-1-5, उत्तरप्रदेश, हिन्दी संस्थान, लखनऊ, तृतीय संस्कारण, 1996,
8. हिन्दी विश्वकोश, खंड-2, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1975
9. Olivelle, Patrick & Donald R. Davis, JR., The Oxford History of Hinduism, A New History of Dharmashastra, Oxford University Press, Oxford, 2018
10. Olivelle, Patrick, A Dharma Reader, Classical Indian Law, E-book, Columbia University Press, 2016
11. Ambika, K.R., Reflections on Dharma, New Bharatiya Book Coporation, Delhi, 2017
12. Swain, Braja Kishore, The Voice of Verdict, A Study of Vyavahara-Dharma in Dharmashastra, Chaukhamba Publications, Delhi, 2007